© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 01 | January – March 2018

साहित्य में संघर्ष के विविध रूप

डा. सुदेश कुमारी,हिन्दी प्राध्यापिका

संघर्ष चेतना : परिभाषा एंव स्वरूप : संघर्ष शब्द का अँग्रेजी पर्याय है.. Struggle जिसका अर्थ है –प्राप्त करना, अधिक परिश्रम करना, छटपटाना, दलों में होने वाला विरोध आदि। हिन्दी में संघर्ष का शाब्दिक अर्थ है–द्वेष, धीरे–धीरे लुढकना, रेंगना आदि। 'हिन्दी शब्दसागर के अनुसार संघर्ष का अर्थ है–एक वस्तु के साथ रगड खाना, संघर्षण, रगड, घिस्सा।[1] दो विरोधी दलों या व्यक्तियों के स्वार्थ के कारण होने वाले विरोध या प्रतियोगिता अथवा स्पर्धा आदि को भी संघर्ष कहा जाता है। वह अहंकारसूचक वाक्य जो अपने प्रतिपक्षी के सामने स्वयं को ऊंचा अथवा बड़ा दिखाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है, संघर्ष कहलाता है। किसी चीज को पीटने, रगड़ने या घिसने की प्रक्रिया को भी संघर्ष कहा जाता है। 'हिन्दी शब्द–सागर' में संघर्ष के लिए ईर्ष्या, डाह, कामोद्दीपन, शत्रुता, वैरभाव, धीरे–धीरे चलना, टहलना, शर्त लगाना, बाजी लगाना आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

डॉ. मोहनलाल रत्नाकर ने संघर्ष को परिभाषित करते हुए लिखा है–'संघर्ष सहयोग की विरोधी प्रक्रिया है। इसमें व्यक्ति–समूह एक–दूसरे के कार्यो में बाधा डालने की कोशिश करते है।[2]

वस्तुतः संघर्ष–प्रक्रिया सार्वभौम है। मानव–समाज में व्यक्ति से लेकर परिवार और परिवार से लेकर सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संघर्ष दृष्टिगत होता है। ग्रीन के शब्दों में–'संघर्ष दूसरों या दूसरों के संकल्प के विरोध, प्रतिकार या बलपूर्वक रोकने के लिए जानबूझ कर किए प्रयत्न को कहते है।'[3]

संघर्ष शब्द द्वन्द्व के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। दो परस्पर विरोधी वस्तुओं या भावों के झगडो को द्वन्द्व कहते है। द्वन्द्व में दो पक्ष अवश्य होते है, जिनमें आपस में विराधाभास की भावना होती है। कभी–कभी वैधानिक अथवा शान्तिपूर्वक उपायों से भी संघर्ष किया जाता है। संघर्ष का क्षेत्र मानव–मन भी हो सकता है और बाह्य जगत भी। संघर्ष में चेतन प्रक्रिया विद्यमान रहती है। प्रतिद्वन्द्वी एक–दूसरे को परास्त करने का प्रयास करते है और यही उसका वास्तविक लक्ष्य बन जाता है। संघर्ष एक वैयक्तिक प्रक्रिया भी है और सार्वभौम प्रक्रिया भी अर्थात एक अकेला मनुष्य भी कर सकता है। और संघर्ष बहुत सारे व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों में भी हो सकता है। संघर्ष में निरन्तरता नहीं होती, यह अविराम गति से नही चलता, वरन् शक्ति का संचय करते हुए रूक–रूककर आगे बढता है। संघर्ष उस अग्नि के समान है, जो सीमित क्षेत्रों में अपनी आश्चर्यजनक शक्ति का परिचय देती हैं। संघर्ष की तुलना हम परमाणु शक्ति से भी कर सकते है।, जो वरदान भी है और अभिशाप भी। उसका उपयोग निर्माण–कार्यों में भी किया जाता है और विध्वंस कार्यों में भी। संघर्ष या द्वन्द्व मनुष्य के विकास के लिए अति आवश्यक है, क्योंकि इसमें प्रतियोगिता या स्पर्धा का भाव प्रधान रहता है। विभिन्न विद्ववानों ने इसकी अवधारणाएँ इस प्रकार प्रस्तुत की है।

वृहत हिन्दी कोश के अनुसार–'द्वन्द्व का अर्थ है–युग्म–जोड़ा, दो व्यक्तियों का परस्पर युद्ध, कलह, संघर्ष, झगडा, स्त्री–पुरूष, नर–मादा का जोड़ा, दो परस्पर विरूद्ध वस्तुओं या भावों का जोड़ा–जैसे शोक–मोह–शीत–उष्ण आदि सन्देह–अनिश्चय, रहस्य आदि।'[4]

'अपूर्ण इच्छाओं, अभिलाषाओं की पूर्ति के मध्य और प्रतिद्वन्द्विता की दुखपूर्ण और अप्रिय अवस्था को द्वन्द्व कहा गया है।[5]

दर्शनशास्त्र के एक शब्दकोश के अनुसार–'आन्तरिक इच्छाओं, अभिलाषाओं व उपलब्धियों की प्रतिकूलता में संवेगात्मक तनाव से उत्पन्न विरोधी स्थिति द्वन्द्वमयी स्थिति होती है।'[6]

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल सांइसेज' में द्वन्द्व का अर्थ चेतन प्रतियोगिता है और इसमें प्रतियोगी आत्मचेतना से प्रतिद्वन्द्वी, विरोधी या शत्रु बन जाते है।'[7]

समाजविज्ञान के शब्दा कोश के अनुसार संघर्ष को इस तरह पारिभाषित कर सकते है–संघर्ष वह है जो मूल्यों और अधिकारों को निष्प्रभावित करता है, शक्ति और स्त्रोतों का संघर्ष जिसमें कोई अपने प्रतिद्वन्द्वी को निष्प्रभावित करते है, उसे हानि पहुंचाते है या शत्रुओं/प्रतिद्वन्द्वियों को खत्म कर देते है।[8]

जब वृहद् परस्पर विपरीत नैतिक माँगें एक साथ प्रस्तुत होकर व्यक्ति से अनुपालन की अपेक्षा करती हैं, तब नैतिक द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती है।[9]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि संघर्ष के पर्यायवाची शब्द है– द्वन्द्व, कलह, झगड़ा, संकल्प–विकल्प, असमंजस, दुविधा, पीड़ा, निराशा, संत्रास, तनाव, विरोधासभास, छटपटाहट और छअपटाहट या द्वन्द्व मनुष्य को विरासत में मिलता है। व्यक्ति का मानस–पटल ही द्वन्द्व या संघर्ष का उद्गमस्त्रोत है। मानव–तन में अनेक इच्छाएं, अभिलाषाएं, विचार और भाव एक साथ

जन्म लेते हैं। उनकी पूर्ति के लिए निरर्थक संघर्ष होता रहता है। व्यक्ति जब अपनी परिस्थितियों से समझौता नही कर पाता और उपलब्धियों से संतुष्ट नहीं होता, तब उनके मन में तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में इच्छाओं की पूर्ति न होने पर व्यक्ति उन इच्छाओं का दमन करने लगता है और यहीं से संघर्ष के कारण ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। मानव–मन की मूल प्रवृत्तियाँ है – भय, काम एवं अहम्। मानव को निरन्तर संघर्ष करने की प्रेरणा इन्हीं प्रवृत्तियों से बराबर मिलती रहती है। अहम–मैं–क्या हूँ, मैं कुछ हूँ? इसी प्रवृति की पूर्ति के लिए मानव प्रायः संघर्षरत रहता है। भय–मनुष्य का विशेष परिस्थितियों में योग्य–आचरण करने योग्य बनता है। काम–मनुष्य के चेतन–अचेतन समस्त व्यवहार के मूल में कार्य करता है तथा मनुष्य के समस्त व्यवहार को प्रेरित करता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि द्वन्द्व या संघर्ष दो पक्षों के मध्य उभरता है। मानव–मन ही प्रायः संघर्ष का युद्धस्थल होता है। जीवन की विषमताएँ, असगतियाँ, घात–प्रतिघात, उतार–चढाव मनुष्य को निरन्तर संघर्ष के लिए प्रेरित करते है। संघर्ष का व्यक्ति से नहीं वरन् देश–समाज और विश्व से भी घनिष्ठ संबंध है। किसी भी देश और उसकी संस्कृति वर्षों तक निरन्तर संघर्ष करते रहते है। संघर्ष का साहित्य के साथ भी घनिष्ठ संबंध है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है, जिसमें समाज में व्याप्त जनसंघर्ष वाणी बनकर जीवन्त हो उठता है।

2. साहित्य और संघर्ष–चेतना : साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। समाज का सत्य–असत्य, शिव–अशिव और सुन्दर–असुन्दर सभी कुछ साहित्य में झलकता है। समाज का सम्पूर्ण स्वर साहित्य के माध्यम से ही मुखरित होता है। साहित्य समाज का लेखा–जोखा है और समाज अहं से इद्रं की अभिव्यक्ति है। साहित्यकार इस अहं से इदं के बीच सामंजस्य स्थापित करने वाला सर्वश्रेष्ठ सेतु है।

नारी–संघर्ष का एक लम्बा इतिहास रहा है। इसी के चलते आज नारी–अस्मिता की बात करना संभव हो गया है। कानून की ओर से नारी को पुरूष के बराबर दर्जा देने के भरसक प्रयत्न हुए हैं, लेकिन सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक ढांचे में बहुत अधिक परिवर्तन न होने से महिलाएँ आज भी भेदभाव की शिकार है। नारी–अस्मिता–संघर्ष की सबसे प्रमुख लड़ाई पुरूष से नहीं 'मर्दवादी सोच' और सड़ी–गली मान्यताओं से है। इस विषय में विचार करते हुए पुरूष ओर मर्दवादी सोच के भेद को याद रखना होगा। स्वस्थ अर्थों में नारी–अस्मिता का अर्थ है–स्त्री–पुरूष के बीच घटने वाले संबंध को नकारे–बिना पारम्परिक संबंध से मुक्ति दिलाना।

रचनाकार के अतल मर्म में पलते हुए एवं उसकी भावनाओं की भट्ठी में पकते रचनात्मक द्वन्द्व का लेखा–जोखा साहित्य है। रचनाकार का यह द्वन्द्व उसके मनोजगत में पलने वाले तनाव खिंचाव और बनाव का परिणाम हुआ करता है। साहित्यकार की सामाजिक अस्मिता से जुड़े हुए पारिवारिक, पारम्परिक, वैयक्तिक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, भौतिक और आर्थिक समस्त संदर्भ उसके जिस साहित्यिक व्यक्तित्व का गठन करते हैं उसकी संघटना रचनाकार के लिए जीवन–मरण का प्रश्न बन जाती है। साहित्य और साहित्यकार के बीच का पड़ाव संघर्ष कहलाता है। किसी भी रचना से पूर्व रचनाकार के अन्तःजगत् में उठने वाले तूफान को संघर्ष या द्वन्द्व कहा जा सकता है। रचनाकार किसी भी रचना को आकार देने में कई बार जीता है और कई बार मरता है। इसी दृष्टि से डॉ. सुमन राजे की आत्मविज्ञप्ति पर दृष्टि डालते हैं–

पहना है
जो सिया है
लिखा है
जो जिया है
सिर्फ गाहे–ब–गाहे
कविताएँ ही हैं
हूजूर
और कुछ नहीं किया है।[10]

सुप्रसिद्ध गजलकार दुष्यंत कुमार ने भी इस अभिव्यक्ति के लिए इन भावों का प्रयोग किया है–

मैं जिसे ओढता बिछाता हूँ
वह गजल आपको सुनाता हूँ।[11]

साहित्यकारों की रचनाएँ चाहे वे किसी भी विधा में हो, प्रतिपल इसी अहं से इदं की संघर्ष–चेतना की व्याख्या करती रहती हैं। यह ओढने–बिछाने, रोने गाने, सिलने–पहनने, पकाने खाने तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसका विस्तार अवर्णनीय है। हर साहित्यकार ने इस अहं से इदं के संघर्ष की व्याख्या अलग–अलग ढंग से की है। समाज में व्याप्त हर अच्छाई–बुराई पर साहित्यकार की नजर होती है। इसी पैनी नजर के कारण वह अत्यंत भावुक होकर सृजन की ओर कदम बढता है। साहित्यकार की

भावनात्मक आँखे हर उस स्थान पर पहुंच जाती हैं, जहाँ कहीं दमन और शोषण अपने पंखों का विस्तार करता है। 'अज्ञेय' जी के शब्दों में इस दृष्टिकोण की परख की जा सकती है–

दूर–दूर दूर.....मैं वहाँ हूँ
यह नहीं कि भागता हूँ
मैं सेतु हूँ–
जो है और जो होगा–दोनों को मिलाता हूँ
मैं हूँ, मैं यहाँ हूँ,
पर सेतु हूँ इसलिए
दूर–दूर–दूर.....मैं वहाँ हूँ।[12]

इतना ही नहीं समाज में व्याप्त प्रत्येक कर्म व मर्म को उजागर करना साहित्यकार का मुख्य कार्य है। समाज का कोई भी कोना उसकी दृष्टि से अछूता नहीं है। प्रत्येक स्थान पर उसकी दृष्टि का पहुँचना सम्भव व निश्चित है इसलिए तो कहते हैं कि 'जहाँ' न पहुंचे रवि वहाँ पहुँचे कवि अर्थात जहाँ सूर्य का प्रकाश भी नहीं पहुँच पाता वहाँ पर कवि की कल्पना पहुंच जाती है। 'अज्ञेय' की उसी कविता की कुछ अन्य पंक्तियां इस भाव को स्पष्ट करती हैं–

यह जो मिट्टी गोड़ता है
कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है
उसकी मैं साधना हूँ।[13]

इतना ही नहीं कि उनकी दृष्टि कुम्हार व किसान तक गई है, बल्कि उनकी दृष्टि उस साहित्यकार पर भी पहुँची है, जो इस की व्याख्या करता है–

यह जो कलम घिसता है
चाकरी करता है पर सरकार चलाता है
उसकी मैं व्यथा हूँ।[14]
यह जो कचरा ढोता है,
यह जो झल्ली लिए फिरता है
और वे धरा धूरे पर सोता है
यह जो गदहे हांकता है,
यह जो तन्दूर झाँकता है।[15]
यह जो कीचड़ उलीचती है
यह जो कन्धे पर चूड़ियों की पोटली लिए
गली–गली झांकती है।[16]

केवल इतना ही नहीं, साहित्यकारों ने इस से भी आगे इस सृष्टि के अन्दर जाकर देखा है और मानव द्वारा मानव के शोषण को जाना है। शोषित के मर्म को समझा है, स्वयं जिया है, उन्हें प्ररित किया है। मानव को संघर्ष–चेतना का भाव देने में साहित्यकारों ने कोई कसर नही छोड़ी है–

जो भी जहाँ भी पिसता है
पर हारता नहीं, न मरता है
पीड़ित, श्रमरत, मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कर्मकर श्रमकर, शिल्पी, सृष्टा
उसकी मैं कथा हूँ।
मैं वहाँ हूँ दूर दूर दूर[17]

कोई भी रचनाधर्मी यदि वह केवल अपनी ही रचनात्मकता के लिए जी रहा है तो फिर उसका संघर्ष क्षणिक है और क्षणिक संघर्ष जहाँ विद्यमान है, वहाँ वह अस्तित्वहीन भी है। साहित्यकार वह है, जिसका साहित्य उसके आत्मसंघर्ष की व्याख्या करता है। इसी कारण राम की शक्ति पूजा' की रचना 'निराला' जी के द्वारा हुई और 'मुक्तिबोध' की रचना, गजानन माधव ने की। उन्होने 'कविता को आत्मसंघर्ष माना और फिर इसी संघर्ष को रचनात्मकता प्रदान कर समस्त संसार को प्रेषित किया। 'आँसू' की रचना की

पृष्ठीभूमि में कवि का आत्मसंघर्ष ही मुखर हुआ है। तुलसी ने रचनाधर्मिता के और रचनाकार के संघर्ष को ही 'स्वान्तःसुखाय'[18] कहा है।

प्रत्येक रचनाकार का संघर्ष उसके मनोसामाजिक परिप्रेक्ष्य का भी परिचायक है, क्योंकि संघर्ष किसी विशिष्ट मनोभूमि एवं सामाजिक पृष्ठभूमि में ही उत्पन्न होता है। सामान्यतया मनुष्य शान्तिप्रिय, सहिष्णु एंव समायोजनशील प्राणी है। जब मनुष्य की समायोजनशीलता पर आघात होता है, तब वह संघर्ष के लिए उद्यत होता है। साहित्यकार भी एक मनोसामाजिक जैवरसायन संघटना ही है, इसलिए उसकी मनोसामाजिकी पर पड़ने वाले आघात ही उसकी रचनात्मकता की उत्प्रेरणा का कार्य करते है। अब तक जितनी भी कलाकृतियां निर्मित हुई हैं, चाहे वे ग्वालियर के महल हों, चाहे भाण्डु के खण्डहर हों या फिर पिकासो के चित्र या अजन्ता–एलोरा की गुफाएं, कबीर, सूर, मिल्टन शैले की कविताएँ, शेक्सपियर के नाटक, मीरा के पद या घनानन्द के कवित्त सभी के मूल में विषय के मूल में रचनाकार का संघर्ष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जो एक–दूसरे के साथ एक–दूसरे के पूरक के रूप में रहते है। अमेरिका के सुप्रसिद्ध व्यवहारविद् शिक्षाशास्त्री जॉन. डी. वी. ने कहा– शिक्षा और जीवन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।'[19] इसी प्रकार रचना और रचनाकार दोनों ही– 'बागर्थाविव सम्पृक्तौ'[20] हैं।

3. साहित्य में संघर्ष के विविध रूप : संघर्ष और जीवन एक–दूसरे के पर्याय हैं। संघर्ष का नाम ही जीवन है। व्यक्ति जन्म से मृत्युपर्यन्त अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु प्रयासरत रहता है। जहाँ जिजीविषा है, वही संघर्ष है। संघर्ष के बिना कोई भी व्यक्ति प्रगति नहीं कर सकता। संघर्ष के बिना उन्नति असंभव है। जीवन में आगे बढने की इच्छा रखने वाले के लिए संघर्ष अत्यन्त आवश्यक है। जीवन में जो जितना आगे बढना चाहता है, उसे उतना ही अधिक संघर्ष करना पड़ता है। संघर्ष एक सार्वभौम प्रक्रिया है, जो सतत सक्रिय रहती है। संघर्ष जीवन का लक्षण है, उसी के द्वारा हमें मोती प्राप्त होते है। जीवन की जटिलताएँ पग–पग पर व्यक्ति को संघर्ष करने के लिए बाध्य करती हैं। मनुष्य के विकास और प्रगति के लिए संघर्ष की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए व्यक्ति का समाज से, परिवार से, मित्रों से, धर्म से, आर्थिक व्यवस्था से, न्याय से, न्याय–व्यवस्था से, राजनीति से, संस्कृति आदि से, किसी–न–किसी रूप में संघर्ष चलता रहता है। व्यक्ति बाह्य जगत् में जो कुछ भी देखता है, अनुभव करता है, उसका उसके अंतर्मन पर बहुत गहरा प्रभाव पडता है। इसलिए तो कहते हैं कि मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में उसके आस–पास के पर्यावरण की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अतः कहना होगा कि व्यक्ति अपने आपसे अथवा अपने विचारों और भावनाओं से भी मानसिक स्तर पर द्वन्द्वरत रहता है, क्योंकि अपनी इच्छा के विपरित परिस्थितियों से समझौता न कर पाने की स्थिति में व्यक्ति तनावग्रस्त रहता है और तनाव कुछ समय पश्चात् संघर्ष के रूप में प्रस्फुटित होने लगता है। व्यक्ति अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों के बीच मानसिक जगत् में हो रहे संघर्ष की सांझेदारी भी करता है। मुख्यतः संघर्ष या द्वन्द्व को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

क. आन्तरिक संघर्ष ख. बाह्य संघर्ष

क. आन्तरिक संघर्ष : सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने आन्तरिक संघर्ष के विषय में कहा है– 'जीवन अन्तर्द्वन्द्वों की श्रृंखला से मिलकर बना है।' वैसे भी मानव–मन अनेक इच्छाओं, आकांक्षाओं, भावनाओं और विचारों का भंडार होता है। सामाजिक बन्धनों या परिस्थितियों के कारण जब व्यक्ति की इच्छापूर्ति नही हो पाती है या व्यक्ति दुविधाग्रस्त रहता है कि वह मन में उत्पन्न हो रही दो विरोधी भावनाओं में से किसे चुने और किसे त्याग दे–तब व्यक्ति मानसिक संघर्ष से ग्रस्त हो जाता है। उस समय मनुष्य 'किंकर्त्तव्य विमूढ' की स्थिति में होता है अर्थात् जब वह निश्चय और अनिश्चय की स्थिति में होता है, तब उसका अन्तः जगत् संघर्ष कर रहा होता है। मानव–मन में सद्–असद् दोनों ही प्रकार की वृतियों का संघर्ष चलता रहता है। किसी वस्तु को पाने के लिए वह मन ही मन छटपटाने लगता है, वह विवश हो जाता है संघर्ष करने के लिए अथवा उसका मन संघर्ष के प्रति चेतन हो उठता है। यह चेतन स्तर पर कम और अचेतन पर अधिक तीव्र प्रक्रिया ही संघर्ष को जन्म देती है। यही स्थिति आन्तरिक संघर्ष है। इसकी तुलना हम दीमक से कर सकते है, जो लकड़ी को भीतर से खोखला कर देता है। मानसिक संघर्ष व्यक्तित्व को विघटित कर देता है। विरोधी भावनाओं को दबाने से चिन्ताएं उत्पन्न होती है और वे मनःसंताप का रूप ले लेती हैं।

सर्वविदित है जैसे–जैसे हमारा समाज विकास के चरम शिखर की ओर अग्रसर होता गया है, वैसे–वैसे अधिक तीव्र व जटिल समस्याएं समाज के समक्ष आती गई हैं। उनका समाधान करने के लिए मानव–मन अत्यन्त भावुक व उत्सुक हो उठा है, इसी चेतना को आन्तरिक संघर्ष कहते है। अब आधुनिक युग में हम समाज का अध्ययन कर उसकी चर्चा करते हैं तो पाते हैं कि हमारा आधुनिक समाज प्राचीन समाज की अपेक्षा अधिक सभ्य, सुविधापूर्ण एवं विकसित है। फलतः मनुष्य के जीवन में अन्तःसंघर्षो की लंबी श्रृंखला विद्यमान है। मनोवैज्ञानिकों ने अनेक खोजों के पश्चात् यह माना है कि मानव के समसत संघर्षो का मूल स्त्रोत मनुष्य–मन में विद्यमान काम–संबधी समस्या और तनाव है। आन्तरिक संघर्ष केवल व्यक्ति में ही नहीं, वरन् यह सार्वभौमिक है अर्थात् समूहों मे भी विद्यमान रहता है। समूहों की विरोधी भावना, घृणा तथा वैमनस्य पहले तनाव का रूप लेते हैं। तत्पश्चात् संघर्ष के रूप में परिवर्तित हो जाते है। समूहों का आन्तरिक संघर्ष प्रायः बाह्य संघर्ष का कारण बनता है। अन्तःसंघर्ष के मुख्यतः तीन रूप होते है–

1. अभिगम अन्तःसंघर्ष
2. अनुनाद अन्तःसंघर्ष
3. वांछित अन्तःसंघर्ष

1. अभिगम–अभिगम अन्तःसंघर्ष : वह संघर्ष, जिसमें मानव–मन में दो इच्छाएं उत्पन्न होती है। दोनो इच्छाएं बराबर, अपनी ओर आकर्षित कर मानव के समक्ष 'चयन' का प्रश्न उत्पन्न कर देती है, जबकि मानव को केवल एक ही का चयन करना पड़ता है, अभिगम–अभिगम अन्तःसंघर्ष कहलाता है। उदाहरणर्थ कह सकते है– जीविकोपार्जन के दो समान रूप से आकर्षक साधनों में से एक के चयन की समस्या। इस प्रकार के अतः संघर्ष में चित या पट (टास) का प्रयोग किया जाता है। व्यक्ति अपने जीवन देश में कतिपय परिवर्तन करके इस कोटि के अंतःसंघर्ष का समाधान कर लेता है। इस प्रकार के अन्तःसंघर्ष का समाधान बहुत शीघ्रता के साथ हो जाता है तथा व्यक्ति को हानि की भी संभावना कम रहती है। यथा कोई व्यक्ति घूमने जा रहा है, उसी दौरान उसका कोई परम मित्र मिलने आ जाता है, अब उसे 'क्या करना है' या क्या नहीं करना है, की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार की द्वन्द्वात्मक स्थिति का सामना मनुष्य को न जाने जीवन में कहाँ–कहाँ और न जाने कितनी बार करना पड़ता है। इस तरह की समस्या का समाधान करना उसे बेखूबी आता भी है, लेकिन यह तो है कि कुछ क्षणों के लिए उसके मन में एक संघर्ष की स्थिति अवश्य उत्पन्न हो जाती है। शीघ्र ही वह इससे मुक्ति पाकर किसी वांछित उद्देश्य पर पहुंच जाता है। उसकी निर्णय–शक्ति की प्रबलता इसमें मुख्य होती है।

2. अनुनादः अनुनाद अन्तःसंघर्ष : वह संघर्ष, जिसमें व्यक्ति के सम्मुख दो अनाकर्षक लक्ष्य उपस्थित हो जाते है, वह दोनों को ही नहीं करना चाहता, किन्तु परिस्थितिवश उसे दो में से एक का चयन करना पड़ता है अनुनाद अन्तःसंघर्ष कहलाता है। उदाहरणस्वरूप एक व्यक्ति परिश्रम भी नहीं करना चाहता और परीक्षा में अनुतीर्ण भी नहीं होना चाहता। इस प्रकार का अन्तःसंघर्ष अति भयानक होता है। इसमें व्यक्ति दो कठिनाइयों के बीच बहुत बुरी तरह उलझ जाता है। यथा–एक सैनिक युद्ध–क्षेत्र में यदि लड़े तो मरने का भय है और यदि न लड़े तो कायरता की भावना से पीड़ित रहता है, इस प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व व्यक्ति को अधिक हानि पहुंचाता है। इस अन्तर्द्वन्द्व में यह भी संभव है कि व्यक्ति की समृति समाप्त हो जाए अथवा उसे पक्षाघात हो जाए। इस अन्तःसंघर्ष का निवारण सहज नहीं होता जब तक कि इस संघर्ष में फंसे व्यक्ति को नयी परिस्थितियों में लाया न जाए अथवा उसे द्वन्द्व से मुक्ति न दिलाई जाये।

3. वांछित अन्तः संघर्ष : वह संघर्ष, जिसमें एक ही लक्ष्य के प्रति दो विरोधात्मक भाव व्यक्ति के मन में आकर उसे उद्वेलित करते है : शीघ्रातिशीघ्र निर्णय ही समाधान हो, अधिगम : वांछित अन्तःसंघर्ष कहलाता है। यथा–एक व्यक्ति अन्तर्जातीय विवाह करना चाहता है लेकिन जातीय अपमान एवं तिरस्कार का भय उसे अन्तर्जातीय विवाह करने से रोकता है। फलतः वह अन्तःसंघर्ष से जूझने लगता है। यह मानसिक संघर्ष विकट समस्या बन जाता है। इसके समाधान के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति शीघ्रातिशीघ्र निर्णय ले तथा द्वन्द्वात्मक निर्णय ले तथा द्वन्द्वात्मक स्थिति से मुक्ति प्राप्त करे। इस प्रकार की स्थिति बहुधा बालकों व युवाओं के समक्ष रहती है जो वे अपने माता–पिता के प्रति अनुभव करते है। उन्हे अपने माता–पिता से जो प्रेम, सुरक्षा और अपनत्व मिलता है, उसे वे पसंद करते है तथा जो अनुशासन व प्रभुत्व रहता है, उसे वे पसंद नहीं करते, इस प्रकार उनमें हैत वृत्ति बनी रहती है। इस प्रकार की समस्या में वे कई बार दूसरों का मार्गदर्शन भी लेते हैं।

क. वैयक्तिक संघर्ष : व्यक्ति जब 'स्व' में तल्लीन हो जाता है, तब उसका संधर्ष वैयक्तिक हो जाता है। उस समय मनुष्य अपने स्वार्थ, अपने व्यक्तित्व और अपनी स्वतंत्रता के प्रति अधिक सजग हो जाता है और सिर्फ अपने बारे में ही चिन्तन करता है। परहित की भावना त्यागकर समाज की उपेक्षा करके वह अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण स्थापित करता है। 'मैं' ही उसका संसार होता है। इस संसार में उसका अहं व्यक्तिगत स्वार्थ के समय अत्यधिक प्रबल हो जाता है। यह संघर्ष या द्वन्द्व व्यक्ति का स्वयं से है। व्यक्ति के अहं पर यदि आघात लगता है, तब वह विद्रोही हो जाता है। ऐसे व्यक्ति का अहं नैतिक मूल्यों अथवा सामाजिक मान्यताओं को जबरन स्वीकारता है तो उसके स्व पर आघात लगता है और अन्तस् संघर्षरत हो उठता है, व्यक्ति क्षुब्ध रहने लगता है।

वैयक्तिक संघर्ष का गहन अध्ययन करने हेतु हमें इसको कुछ अन्य उपशीर्षकों के अन्तर्गत रखना होगा।

1. अतृप्त काम–संबंधी संघर्ष : मानव–जीवन की शाश्वत प्रवृत्ति का नाम है– 'काम'। 'काम' और 'प्रेम' मानव–जीवन की पूर्ति करने वाली दो ऐसी वासनाएं या ऐसी कृतियां है जिनकी अतृप्ति जीवन में कुंठा, निराशा, विसंगति को जन्म देती है। व्यक्ति की अतृप्त इच्छा और कामना भी उसके व्यक्तित्व में तीव्र विद्रोह, आक्रोश, द्वन्द्व और संघर्ष को जन्म देती है। उसमें असंतुलन आ जाता है और व्यक्ति नैतिक–अनैतिक का बंधन तोड़ देता है तथा उसका अन्तःजगत संघर्षमय हो उठता है।

2. भ्रमवश संघर्ष : जीवन में अनेक बार ऐसी स्थितियां आती है जब व्यक्ति भ्रम के कारण संघर्ष या द्वन्द्वरत हो जाता है। व्यक्ति न तो अपनी बात दूसरों के समक्ष स्पष्ट प्रकट कर पाता है और न ही दूसरों की बातों को ठीक तरह से समझ पाता है। भ्रममग्न मस्तिष्क में विचार–मंथन चलता रहता है, जो अन्तःसंघर्ष का परिचायक है।

3. हीन भावनावश संघर्ष : हीनभावना मानव के व्यक्तित्व को कुण्ठित कर देनेवाली एक विशिष्ट प्रवृत्ति है। हीनभावना के कारण व्यक्ति अन्तर्मुखी हो जाता है। स्वयं को समाज से कटा–कटा रखता है, किसी वस्तु का अभाव जैसे–सौन्दर्यभाव, आर्थिक अभाव, अशिक्षा अथवा प्रेम–अतृप्ति व्यक्ति के मन को कुण्ठित कर देती है, व्यक्ति का जीवन निराशापूर्ण हो जाता है। हीनभावना से ग्रसित व्यक्ति अन्दर–ही–अन्दर अतृप्त और अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित रहता है और छटपटाता रहता है।

ख. बाह्य संघर्ष : जिस प्रकार मानव–जीवन में अन्तःसंघर्ष विद्यमान रहता है, उसी तरह उसके जीवन में बाह्य संघर्ष का भी रहता है। बाह्य संघर्ष का तात्पर्य है सामाजिक खिंचाव के कारणवश होनेवाली संघर्षशील प्रक्रिया। सामाजिक घातों, प्रतिघातों पार्थिक तथा पदार्थिक स्थितियों की विपरितता से बाह्य संघर्ष का जन्म होता है। सामाजिक प्राणी होने के कारण व्यक्ति को अपने अस्तित्व का स्थायित्व प्रदान करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। यह संघर्ष वह अपने आसपास के समाज से, सामाजिक व्यवस्था से, परिस्थितियों से, रूढियों से और परम्पराओं से करता है। संघर्ष का आधार मनुष्यों और समूहों में पाई जाने वाली अनेक प्रकार की विभिन्नताएं है, बहिर्जगत् में होनेवाले संघर्ष का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक होता है।

4. संघर्ष–चेतन के विविध आयाम :

संघर्ष–चेतना के विविध आयामों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है।

क. आर्थिक संघर्ष

आधुनिक युग कलयुग है। विज्ञान प्रदत्त सुविधाओं ने मानव को अत्यन्त भौतिकवादी एवं आरामपसंद बना दिया है। वैज्ञानिक तंत्र तथा औद्योगीकरण ने मानव के अर्थतंत्र को अत्यन्त प्रभावित किया है। आर्थिक विषमतांए व्यक्ति में खीज, निराशा और क्रोध उत्पन्न कर देती है, जिससे व्यक्ति अपने अन्तस् में तो द्वन्द्वी हो ही उठता है, साथ ही साथ बाह्य संस्थाओ के प्रति भी विद्रोही हो जाता है। भिन्न–भिन्न आर्थिक स्थिति के समूहों में वेशभूषा, रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज और सोचने विचारने के ढंग में अन्तर पाया जाता है। आर्थिक अन्तर में वृद्धि के साथ–साथ व्यक्ति, समाज या समूह में सामाजिक दूरियां बढ़ती जाती हैं, इससे विभिन्न वर्गो के लोगों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। यह संघर्ष सम्पूर्ण विश्व में सब कहीं व्याप्त है। व्यक्ति, समाज, देश एवं विश्व सभी संघर्ष से ग्रस्त है। अर्थ के कारण होने वाले संघर्ष पर प्रकाश डालते हुए डॉ. मोहनलाल रत्नाकर कहते है–'अर्थ–प्रधान व्यवस्था ने एक ओर प्रगति के नए–नए पथ प्रशस्त किए हैं तो दूसरी ओर विभिन्न आर्थिक विषमताओं को जन्म दिया है। आधुनिक युग के हर मोड़ पर यह संघर्ष विद्यमान है। कोई चाहे न चाहे इसका सामना करना पड़ता है।'[22]

ख. सामाजिक संघर्ष : व्यक्तियों का समूह समाज का निर्माण करता है। व्यक्ति और समाज का अटूट संबंध है। प्रत्येक समाज में भिन्न भिन्न समूहों की एक स्थिति होती है। उसी स्थिति के अनुरूप उसके कुछ विशेष कार्य होते हैं। यथा– हिन्दू–समाज पर चर्चा करते हैं–हिन्दू समाज में ब्राह्मण जाति को सबसे ऊंची और शूद्र को निम्नजाति का माना जाता है। दोनों की स्थिति और कार्य अलग–अलग होने के कारण ऐसा है। समाज में ऊंचा स्थान पानेवाले व्यक्ति निम्न स्थान के लोगों को उपेक्षा और हेय दृष्टि से देखते हैं। यही असमानता की भावना समाज में संघर्ष को जन्म देता है। इसी विषय पर प्रकाश डालते हुए डॉ. मंजुला गुप्ता कहती है कि–'व्यक्ति का संघर्ष एक ओर तो सामाजिक परम्पराओं से है, जो उसके संस्कारों में जड़ जमाए है और दूसरी ओर अनिच्छा से उनके पालन में है। व्यक्ति का बाह्य स्वरूप तो परम्पराओं को स्वीकारता है पर उसका अन्तस् विद्रोह करता है। ऐसी विषम परिस्थितियों में व्यक्ति को मुखौटे लगाकर जीवन की दोहरी मान्यताओं में जीना पड़ता है, यही संघर्ष है।'[23]

ग. राजनीतिक संघर्ष : मानव–समाज में राजनीति का भी अपना महत्त्व है। समाज पर राजनीतिक संघर्ष का प्रभाव अवश्य पड़ता है। राजनीति का प्रत्येक निर्णय समाज को प्रभावित करता है। राजनीति के क्षेत्र में स्वार्थसिद्धि के निमित्त विभिन्न व्यक्तियों या दलों में जो संघर्ष होता है, उसे राजनीतिक संघर्ष कहते है। साम्प्रदायिक भावनाएं उसे और अधिक उग्र बना देती है। इससे प्रत्येक व्यक्ति का जीवन प्रभावित होता है। उदाहरणार्थ द्रविड मुनेत्र कडगम (डी.एम.के.) नामक राजनीतिक दल ने उत्तर और दक्षिण के लोगों में क्षेत्रगत संघर्ष को उत्पन्न किया। यह राजनीतिक दल अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए विभिन्न भाषाभाषी समूहों में संघर्ष को विस्तार तथा बढ़ावा देने का सतत प्रयास करता रहा है। राजनीतिक संघर्ष से व्यक्ति का जीवन किस प्रकार प्रभावित होता है, इसके लिए प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध का उदाहरण हमारे सामने ज्वलंत सत्य है।

घ. जातीय संघर्ष : जातीय संघर्ष में जातिवाद की विचारधारा बीज रूप में कार्य करती है। परिणामस्वरूप एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों के प्रति घृणा द्वेष, ईर्ष्या और वैरभाव से ओतप्रोत हो उन्हें स्वयं से ऊंचे या निम्न समझते है अर्थात उनके बीच ऊंच नीच की कभी न पाटी जानेवाली खाई बन जाती है। जातीय संघर्ष के मूल में परस्पर विरोधी मान्यताओं का होना भी एक कारण है। जैसे हिन्दू–जाति व मुस्लिम–जाति के संघर्ष में विरोधी मान्यताएं काम कर रही है। हिन्दू जिस गाय को गऊ माता कहकर

मां के समान सम्मान देता है, उसकी पूजा करता है, वहीं मुसलमान उसका वध करता है, उसके मांस का भक्षण करता है। यही विरोधी मान्यताएं टकराती है और संघर्ष का रूप धारण कर लेती है। शिक्षा का अभाव भी जातीय संघर्ष को बढ़ावा देने का कार्य करता है। संकीर्ण विचारधारा का त्याग और शिक्षा पद्धति में सुधार जातीय संघर्ष की समस्या का निवारण कर सकता है।

ड. धार्मिक संघर्ष : मानव ने जब से होश संभाला, तभी से उसने धर्म–कर्म की चर्चा आरम्भ कर दी। उसके लिए धर्म का अर्थ है– सत्य एवं कल्याण की भावना, त्याग, सेवा, बलिदान व नैतिक मान्यताओं का पालन। परिवर्तित मूल्यों के युग में व्यक्ति का मन पुरानी मान्यताओं, ओढ़ी हुई नैतिकता और समाजिक परम्पराओं को मानने में द्वन्द्व का अनुभव हो सकता है। कट्टरता की भावना धर्म को विकृत कर देती है। उसके कारण धार्मिक संघर्ष जन्म लेते हैं। धर्मान्धता के कारण रक्तपात होता है। धर्म के नाम पर खून की होली खेली जाती है तथा कुत्सित एवं अमानुषिक कार्य भी होते हैं। उदाहरण स्वरूप हम भारतीय इतिहास की 1947 की घटना को ले सकते हैं– जब भारत आजाद हुआ तो आजादी के उपहार के साथ देश का बंटवारा भी मिला, जिसके कारण इस्लाम व हिन्दू–धर्म के अनुयायियों में पारस्परिक संघर्ष भयंकर नरसंहार तक जा पहुँचा। धार्मिक ग्रंथों का अपमान हुआ। गांव–गांव में आगजनी हुई। विभिन्न धर्मावलंबियों का कत्लेआम धर्म के नाम पर अब में भी इस तरह के कुकृत्य कभी भी दिखाई दे जाते है। पंजाब में धर्म के नाम पर जो खून बहा है, उसे भी हम विस्मृत नहीं कर सकते।

च. नैतिक संघर्ष : समाज में धर्म के साथ नीति अर्थात् नैतिकता दोनों साथ–साथ पनपते हैं। इन्हें एक ही सिक्के के दो पहलू कहा जा सकता है। नैतिक मान्यताओं को न मानना अधर्म समझा जाता है। नैतिक मूल्यों के पतन के साथ धर्म की भी क्षति होती है। वर्तमान में मानव अधिक भौतिकवादी और स्वार्थप्रेमी हो गया है। उसे ज्ञान है कि धर्म एवं नैतिकता दोनों ही समाज द्वारा निर्मित है प्रकृति या ईश्वर प्रदत्त नहीं है। इसलिए वह इनकी अवमानना करने लगा है। इन्हें औपचारिकताएं कहकर जीवन से इन्हें दरकिनार करने का प्रयास कर रहा है। धर्म के नाम पर नैतिक परम्पराओं को स्वीकारने में व्यक्ति का मन संघर्षरत हो उठता है। व्यक्ति समाज द्वारा बनाई हुई परम्पराओं को नीति के नाम पर नहीं मानता तथा उनका पालन करना अपनी विवशता समझता है। वह धर्म और नैतिकता को निभा नहीं रहा है, बल्कि उन्हें ढ़ो रहा है। इसका विरोध भी वह खुलकर नहीं कर पा रहा है। वह समाज की नैतिक रूढियों के समक्ष स्वयं को शक्तिहीन और सामर्थ्यहीन अनुभव करता है तथा संघर्षरत हो उठता है। इसी कारण कभी कभी वह धर्म के विरूद्व एंव अनैतिक कार्य करने पर उतारू हो जाता है।

छ. सांस्कृतिक संघर्ष : मनुष्य को मानवता की ओर प्रेरित करने वाले आदर्श आचार–विचारों और कार्यो व अनुष्ठानों को संस्कृति की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। डॉ. कृष्ण अवस्थी संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते है–'संस्कृति मनुष्य को मानवता की ओर प्रेरित करने वाले आदर्शो, आचार–विचारों और कार्यो, अनुष्ठानों की समष्टि का नाम है।' संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। किसी भी देश, जाति और प्रांत का रहन–सहन, भाषा, चिन्तन, धार्मिक व सामाजिक मान्यताएं अलग–अलग होती है। यह भिन्नता जब द्वेष, घृणा और तनाव का रूप ले लेती है तब संघर्ष उत्पन्न होता है। प्राच्य व पाश्चात्य संस्कृति का संघर्ष भी विरोधी मान्यताओं के कारण ही है। विभिन्न जातियों के बीच होने वाला सांस्कृतिक संघर्ष, हिंसा, मारकाट, आगजनी, रक्तपात, विध्वंस आदि का आधार होता है। इसकी जड़ें बहुत गहरी होती हैं, जो सरलता से नष्ट नहीं होती हैं। पुरानी पीढ़ी के लोग परम्परागत संस्कृति में आस्था रखते है, जबकि नई पीढी के लोग नई संस्कृति का अनुकरण करते है। इन दोनों पीढ़ियों का सांस्कृतिक संघर्ष प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूपों में चलता रहता है।

सांस्कृतिक संघर्षो का समाधान उच्च मानवीय भावनाओं और मान्यताओं द्वारा ही सम्भव है। प्रत्येक राष्ट्र का अपना सांस्कृतिक इतिहास इसका ज्वलंत उदाहरण है।

ज. दाम्पत्य संबधों में संघर्ष : जब हम दाम्पत्य संबंधों पर दृष्टि पात करते है तो पाते हैं कि आज स्त्री–पुरूष में बहुत परिवर्तन हुआ है। स्त्री घर की चारदीवारी में बंद रहने वाली प्राणी न रहकर चारदीवारी के बाहर भी रचनात्मक कार्य में संलग्न है। वह पुरातन परम्पराओं को तिलांजलि देकर पुरूष के कंधों से कंधा मिलाकर चल रही है। वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम कर चुकी है, फलतः पति पत्नी के संबंधों में दरार आना स्वाभाविक है। अब स्त्री पति की दासी न रहकर सहभागी बन कर रहना चाहती है। परिणामस्वरूप पति–पत्नी एकाकी जीवन को अपना रहे है। वैवाहिक जीवन में वे एक साथ नहीं रह पाते और स्त्री–पुरूषों का जीवन संघर्षयुक्त हो जाता है। आधुनिक युग में स्त्री–पुरूष संबंधो में संघर्ष एक ज्वलंत समस्या है।

झ. पारिवारिक संघर्ष :

वर्तमान युग परिवर्तन का युग है। इसी का प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभाव हमारे परिवारों पर भी पड़ रहा है। संयुक्त परिवारों के टूटने की ध्वनियां सुनाई पड़ रही है। एकल परिवारों के निर्माण की चहल–कदमी देखी जा सकती है। मानव की आन्तरिक भावनाएं समाप्त हो रही हैं। अर्थ ने भी भावनाओं का रूप ले लिया है। परिवारिक संबंधों में खोखलापन, दोगलापन व स्वार्थ दिखाई देने लगा है। हर व्यक्ति एकाकी रहना पंसद करता है। पति–पत्नी, मां–बाप, भाई–बहन आदि के रिश्तों में परम्परागत आदर्श न होकर अब मात्र ऊपरी दिखावा रह गया है। वे एक–दूसरे के साथ औपचारिकताएं निभाते हैं तथा परिवार में अपने को असुरक्षित महसूस करते

हैं। स्नेह और अपनत्व मात्र औपचारिकता निभाने के लिए रह गए हैं। फलतः संयुक्त परिवार के सदस्य मानसिक संघर्ष से गुजरते हैं, और व्यक्ति का जीवन कलहपूर्ण निराशायुक्त, ऊब भरा तथा अशान्तिपूर्ण बन जाता है।

अस्तु संघर्ष का जीवन और साहित्य का महत्त्व अंग है। इससे जीवन और साहित्य दोनों ही गतिमान होता है। संघर्ष साहित्य को जीवन्तता तथा प्राणवत्ता प्रदान करता है।

संदर्भ

1. हिन्दी शब्द सागर–दसवां भाग, पृ. 4851
2. डॉ. मोहनलाल रत्नाकर–हिन्दी उपन्यास : द्वन्द्व एवं संघर्ष, पृ. 3
3. A. W. Green
4. कालिकाप्रसाद द्वारा संपादित वृहत हिन्दी कोश, पृ. 655
5. Dectionary of Education
6. James Brover--A sictionary of phychology - V
7. Encyclopaedea of Social science Vol-I P. 94-95
8. A Cictionary of Social Sciences
9 Encyclopaedea of Religious Knowledge
10. डॉ. सुमन राजे : चौथा सप्तक : जबावदेही
11. साये में धूप : धर्मयुग 1972
12 अज्ञेय, इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, पृ. 314
13. वही, पृ. 315
14. वही, पृ. 316
15. वही, पृ. 316
16. वही, पृ. 316
17. वही, पृ. 317
18. स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा। – तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकांड मंगलाचरण, पृ. 2
19. डॉ. रामशकल पाण्डेय, शिक्षा के दार्शनिक स्वयं सामाजिक आधार, पृ. 27
20. कालिदास, रघुवंश, पृ. 1/1
21. डॉ. लाभसिंह एवं गोविन्द तिवारी, असामान्य मनोविज्ञान के मूल आधार, पृ. 92
22. डॉ. मोहनलाल रत्नाकर, हिन्दी उपन्यास : समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व एवं संघर्ष, पृ. 22
23. डॉ. मंजुला गुप्ता, हिन्दी उपन्यास : समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व, पृ. 53
24. डॉ. कृष्ण अवस्थी, वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 17